उत्तराखण्ड में ग्रामीण स्त्री जीवन का वास्तविक स्वरूप

***डॉ0 (श्रीमती) बसन्ती रौतेला**

उत्तराखण्ड के हिमाच्छादित पर्वत शृंखलाओं को जितना अभ्यास आतप, गर्मी, वर्षा, तूफ़ान तथा कठोर शीत को सह लेने का है उतनी ही अभ्यस्त है यहाँ की ग्रामीण नारी सशक्त, साहसी और परिश्रमी। परिवार का मुखिया उसका पति, परिवार के जीवन यापन के लिए शहर की गुमनाम गलियों में मेहनत मजदूरी कर रहा होता है तब ग्राम्या ही सम्पूर्ण परिवार को सम्भालती है। घर–बाहर, समाज के सभी कर्तव्यों का निर्वाह सहजता से करती है। वास्तव में वह कहीं श्रम, शक्ति और वेदन की साक्षात् मूरत है तो कहीं सम्पूर्ण उत्तराखण्ड के गाँवों की अर्थव्यवस्था की रीढ़ बनी हुई है। अपने त्यौहारों, मेलों, उत्सवों, परम्पराओं और संस्कृति को संजोए रखना भी उसे आता है। सामाजिक चैतन्यता, पर्यावरण की चिन्ता और आस–पड़ोस की घटनाओं के प्रति भी वह सदैव सचेत रहती है। जिसके कारण ही आज तक हमारे गाँव आबाद बने हुए हैं। यहाँ ऐसे ही अनेक बिन्दुओं के आधार पर ग्राम्या के वास्तविक स्वरूप को व्यक्त किया जा रहा है।

शोध प्रविधि– प्रस्तुत शोध पत्र में मेरे द्वारा सर्वप्रथम मौलिक तथ्यों को एकत्र किया गया अर्थात् संकलनात्मक विधि अपनायी गयी। ग्राम्या पर जो मौलिक व सटीक साहित्य मुझे मिला उसका विस्तृत अध्ययन, मनन, चयन, वर्णन और विश्लेषण किया गया है। तत्पश्चात् कुछ रचनात्मक समाधान भी खोजने की पद्धति अपनायी गई है।

प्राकृतिक रूप से समृद्ध उत्तराखण्ड सुरम्य घाटियों, मखमली बुग्यालों, दुर्लभ पशु–पक्षियों, संजीवनी औषधियों आदि अकूत वैभव को अपने अंचल में समेटे हुए हैं। इन सबके बावजूद भी जीवनयापन के लिए यहाँ के निवासियों का बहिर्गमन होता रहा है। महत्वाकांक्षा पूर्ति और आजीविका के लिए निष्क्रमण यहाँ के पुरुष का स्वभाव बना तो परिवार तथा समाज के दायित्व का भारी बोझ यहाँ की महिला की नियति। अपने कष्ट साध्य और विसंगतिपूर्ण जीवन संघर्ष के बूते चलने वाली उत्तराखण्ड की 'धुरी' वहाँ की नारी में हिम्मत, साहस, निर्भीकता, कर्मठता और जुझारूपन का कभी अभाव नहीं रहा। अप्रदूषित जलवायु, नैसर्गिक परिवेश व पर्वतीय वनस्पतियों से परिष्कृत माटी से बने उसके तन में इतनी सक्षमता रही है कि भाग्य पर रुदन न करके उत्तराखण्डी महिला 'चरैवति–चरैवति' सिद्धान्त के अनुरूप कार्य करते हुए सदैव गतिशील रही है। उत्तराखण्ड में स्त्री जीवन के इसी गतिशील स्वरूप को निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है –

परिवार का केन्द्र बिंदु – उत्तराखण्ड की नारी को यदि परिवार का केन्द्र बिन्दु माना जाए तो अत्युक्ति नहीं। वह सदैव पारिवारिक बोझ अपने कंधों पर लादे दिखायी देती है। उसका सम्पूर्ण जीवन श्रम और सेवा में ही व्यतीत हो जाता है। औद्योगिक परिस्थितियां विकट होने के कारण भूमि भी यहाँ अधिक उपजाऊ नहीं है। फलतः उसे परिवार का भरण–पोषण करने के लिए जीवनभर खटना पड़ता है।

उत्तराखण्ड में एक उक्ति है कि बारह वर्ष का लड़का युद्ध कर सकता है और बारह वर्ष की लड़की पारिवारिक भार उठा सकती है। वास्तव में आर्थिक कठिनाइयों तथा परम्पराओं के सम्मिलित रूप के कारण यहाँ के लड़के–लड़कियाँ अल्पायु में भी स्त्री–पुरुष का भार वहन करते दिखाई देते हैं। (चन्दोला, सरला; 1999, पृ0– 146)

उत्तराखण्ड के गांवों में महिलाओं की भूमिका के बारे में सोचते हुए कृष्णा भट्ट लिखती हैं – ....."मेरे सामने उस चार पांच साल की छोटी–सी ग्रामीण बालिका का चित्र खड़ा हो जाता है जो बड़ा सा झगुला पहने सिर पर पीतल की तौली में नौले का ठंडा पानी भरकर डगमगाती हुई गरदन से, घर की ओर आ रही हो अथवा गाँव पहुँचते ही बच्चों की भीड़ में छोटी सी बालिका, जो अभी ही अपने पैरों पर चलना सीखी है, अपने छोटे भाई या बहिन को जो उससे थोड़ा ही कम वजन का हो, पीठ पर या कमर पर लादे, बाल सुलभ नेत्रों से आगंतुक की ओर टकटकी लगाये देखती हुई, शिशु भार को बार–बार संभालने की कोशिश करती हो। (भट्ट, कृष्णा; 1988, पृ0– 38)

*प्रवक्ता हिन्दी, मोहन लाल साह बालिका इण्टर कॉलेज, नैनीताल।

उत्तराखण्ड की यह बालिका 'अपने पैरों पर चलने के समय से ही दूसरे छोटे शिशु को संभालने की जिम्मेदारी संभालती है। माँ तो खेतों में काम करने, जंगल में हरी घास काटने या लकड़ियाँ लाने आदि के काम से चली जाती है। तब तक छोटी बालिका ही शिशु को संभालती है। रोने पर पुचकारती है, स्नेह और थपकियाँ देकर सुलाती है, गोदी में लेकर घूमाती हैं। इस प्रकार सचमुच वह एक माँ की भूमिका अदा करती है।' (भट्ट, कृष्णा; 1988, पृ0– 38)

उत्तराखण्ड की स्त्री परिवार में बेटी, बहू, पत्नी, गृहिणी और माँ की भूमिका सतत् निभाती है। आर्थिक विषमताओं के कारण पुरुष प्रवासी बनता है और स्त्री परिवार के सम्पूर्ण बोझ को सम्भालती है। कठोर जीवन–परिस्थितियों के बीच अभावों और यंत्रणाओं में भी वह पिसती है। मात्र क्रन्दन ही उसका आश्रय होता है जो उसके विदीर्ण हृदय से कभी–कभी घने जंगलों अथवा चट्टानों पर जाते हुए फूट पड़ता है। परन्तु इन सभी विषम परिस्थितियों के बीच भी परिवार के केन्द्र बिन्दु के रूप में उत्तराखण्ड की स्त्री सदैव परिश्रम करती हुई जीवनयापन करती है।

श्रम की जीवन्त मूर्तियाँ – हमारे देश में सर्वत्र महिलाओं के उत्थान की चर्चाएँ प्रायः गोष्ठियों, सम्मेलनों में होती है और प्रस्तावों के पास होने का क्रम जारी रहता है। किन्तु देशों के अधिकांश पिछड़े, उपेक्षित इलाकों की महिलाओं को इसका आभास तक नहीं होता। हिमालय की गोद में बसे ऊँचे पर्वत शिखरों से घिरे उत्तराखण्ड की नारियाँ भी इसका अपवाद नहीं है, वे आजादी के इतने वर्षों बाद भी नाना प्रकार के शोषणों और समस्याओं से घिरे जीवन को अत्यन्त साहस के साथ घसीटती चली जा रही हैं। उत्तराखण्ड में भूमि के नाम पर हर परिवार के नाम छोटे–संकरे कुछ सीढ़ीनुमा खेत ही होते हैं, जिससे गुजारा करना मुश्किल है। प्रचुर प्राकृतिक साधनों और रोजगार की तमाम सम्भावनाओं के बावजूद उत्तराखण्ड निवासी आज भी अपने और परिवार के पेट के लिए दो रोटियाँ कमा सकने का साधन नहीं जुटा पाता। ऐसी स्थिति में अपनी जन्मभूमि को अपना मन अर्पण कर कहीं दूर आजीविका की खोज में चल देना ही पुरुष की नियति बन जाती है और घर में रह जाती है, अकेली नारी, जिसकी जिम्मेदारी की कोई सीमा नहीं होती।

उत्तराखण्ड की स्त्री एक व्यस्त मशीन की भांति काम करती है। 'रात के तीसरे पहर से प्रारम्भ होता है, पर्वतीय नारी का दिन, जब गाँव के हर घर से आती चक्की की घर्र–घर्र .....मानो सोई प्रकृति को ताना देती है। पूरे परिवार के लिए दो जून का आटा जुटाकर, एक हाथ से चेहरे से टपकते पसीने को पोछती हुई और दूसरे हाथ में गगरी लेकर फिर वह चल देती है – एक दो फर्लांग या उससे भी दूर स्थित 'धारे' या 'नौले' को; जहाँ पानी भरते–भरते गत रात की दुश्चिन्ताओं को जैसे शरीर दर्द के कारण नींद न आना या रात में देखे सपने के फल–कुफल को प्रवासी पति की कुशलता से जोड़ने वाली बात, एक दूसरे से कह–सुनकर कुछ सांत्वना–सी पा लेती है। सिर पर भारी गगरी रखकर जब वह लौटती है तब कहीं जाकर क्षितिज से हल्का प्रकाश फूटता है और पाजी सूरज अभी भी अलसाया–सा नर्म बिस्तर पर कुनमुना रहा होता है। (पंत, सुरेश; 1979, पृ0– 40)

.....फिर सुबह होने के बाद तो उसके पास छोटे–छोटे बच्चे भी हैं और दो बूढ़े जर्जर प्राणी भी, 'गोठ' में बँधे मवेशी भी हैं और खेतों में घास से दबी जा रही कुछ फसल भी। गाँव व नाते–रिश्तेदारों के प्रति कुछ कर्तव्य भी हैं और चिट्ठीरसैन की प्रतीक्षा व उत्सुकता भी क्योंकि 'बहुत' दिन हुए 'उनका' काई पत्र नहीं आया और शायद उन्होंने कुछ रुपये ही भेजे हों। घर में गुड़–तेल–नमक समाप्त हुए कई दिन हो गये हैं और दुकानदार ज्यूँ भी अब ज्यादा उधार देने से कतराने लगे हैं। कृसारा दिन आपाधापी में गुजर जाता है। (पंत, सुरेश; 1979, पृ0– 41)

दिनभर के अपने श्रम के साक्षी सूरज को थका जानकर जब वह बड़े दुलार से क्षितिज के पार सुला देती है, तब भी उसके अपने बच्चे भूखे पेट और उनींदी आँखें लिए उसकी बाँट जोहते होते हैं। .....अंधेरा होने पर मरणासन्न सी वह घर लौटती है; किन्तु फिर वही खाली गगरी, बुझा चूल्हा! पर कोई झुंझलाहट नहीं; कोई रोना नहीं! नारी सुलभ आकांक्षाओं के टूट जाने का दर्द समेटे हुए उसने हर तरह की परिस्थितियों से स्वयं को आत्मसात कर लिया है, क्योंकि उसे मालूम है कि वह एक मशीन पहले है, माँ, पत्नी या स्त्री बाद में। (पंत, सुरेश; 1979, पृ0– 41)

इस प्रकार घर व बाहर दोनों जिम्मेदारियों को लगातार अपने श्रम से निभाते हुए उत्तराखण्ड की स्त्रियाँ श्रम की जीवन्त मूर्तियाँ बनकर पहाड़ के जीवन में प्राणों का संचार करती है।

वेदना एवं शक्ति की प्रतिमूर्ति – जब हम महिलाओं तथा समाज में उनकी भूमिका की बात करते हैं तब हम न केवल उनकी सामाजिक भूमिका बल्कि आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में उनकी भागीदारी पर भी ध्यान केन्द्रित करते हैं। अर्वाचीन काल से ही महिलाओं का केवल घर–गृहस्थी के साथ नाता रहा है। अपने गृहस्थ जीवन से निकलकर समाज के एक सक्रिय सदस्य के रूप में स्वयं को स्थापित करने के लिए उन्हें स्वतंत्रता देने के बजाय उन्हें केवल प्रजनन व परिचारक संबंधी कार्यों के योग्य ही माना गया। हमारे सामाजिक ताने–बाने ने महिलाओं के मन में कूट–कूट कर भर दिया है कि समाज में उनकी भूमिका बहुत सीमित है, उनमें स्वयं के लिए सोचने की शक्ति का अभाव है। पुरुषों की भांति सामाजिक कार्यों में हिस्सेदारी निभाने व अपने अधिकारों का प्रयोग करना भी उनके लिए निशिद्ध है। इस सोच के परिणामस्वरूप आर्थिक व सामाजिक सुरक्षा के लिए पुरुषों पर महिलाओं की निर्भरता बढ़ती चली गयी।

उत्तराखण्ड में पहाड़ का पारिवारिक जीवन एवं वहाँ की नारी का पारस्परिक सम्बन्ध एक विचारणीय प्रश्न है। नारी का जीवन यातनाओं से परिपूर्ण दिखाई देता है। लोक में नारी को 'हेय' समझने की परम्परा नवीन नहीं है। इसका प्रमाण सर्वत्र नारी ह्रदय से फूटे खुदेड़ गीतों में दिखाई देता है।

इन खुदेड़ गीतों में आशा की किरण का धूमिल प्रकाश दिखाई देता है। उस प्रकाष पर आश्रित ये नारियाँ अपने जीवन के सुख–दुःख के क्षण व्यतीत करती हैं। इनका ह्रदय सर्वत्र कुहासे से युक्त दिखाई देता है। प्रकृति के क्रिया व्यापार सुचारू रूप से गतिशील दिखाई देते हैं। किन्तु नारी ह्रदय की पीड़ा पूर्ववत दिखाई देती है। ऐसा एक उदाहरण दृष्टव्य है –

'फेर बौड़िगे स्यो, झुमैलो, फूल संगरांद झुमैलो,
जौंकी क्वी होलो झुमैलो, कौतिक मिललो झुमैलो।
अपणा विराणां झुमैलो मिठाई ल्याला भै झुमैलो
निरमेत्या धियांण झुमैलो, बणु–बणु बयाली झुमैलो
घ्वीड़ को अपणों झुमैलो चौथ पियारो भै झुमैलो।
ये कुली नारी भै झुमैलो, खरड़ी डाली सी झुमैलो।

(चंदोला, सरला; 1999, पृ0– 1956)

उपर्युक्त गीत नारी का श्वसुरगृह के प्रति उपेक्षा भाव और पितृगृह की ललक को प्रकट करता है। वह अपने उपेक्षित जीवन को –खरड़ी डाली' कहती है। जिसका तात्पर्य उस वृक्ष से है जो ठूंठ मात्र दिखाई देता है। परन्तु इन सभी वेदनाओं के बावजूद उत्तराखण्ड की महिलाओं में असीम शक्ति है जो उन्हें जीवन में हर पल सक्रिय रखती है। सामान्यतः कृशकाय होने पर भी महिलाएँ मानसिक व शारीरिक रूप से सुदृढ़ व शक्तिशाली होती हैं।

परिवार का मुखिया पुरुष होता है, परन्तु घर–गृहस्थी महिलाओं के कठिन परिश्रम से चलती है। दैनिक जीवन में कठिन परिश्रम के बावजूद भी वे गाँवों की अन्य गतिविधियों में भी भाग लेती हैं। अपने परिवार के हित एवं सुख के लिए समर्पित इन महिलाओं को दीन–हीन समझा जाता है। इनके त्याग व बलिदान को कोई नहीं समझ पाता।

पहाड़ी ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के सशक्तिकरण की नितांत आवश्यकता है। विकास की इस प्रक्रिया में कष्टों से उत्पन्न महिलाओं की वेदना को उनकी शक्ति में बदलकर समाज में सार्थक, अनुकूल व उल्लेखनीय परिवर्तन लाना होगा। इस स्थिति के लिए अभी उत्तराखण्ड की महिलाओं को लम्बा सफर तय करना होगा, जिससे स्वयं के साथ–साथ देश के सर्वांगीण विकास में वे महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकें।

अर्थव्यवस्था की रीढ़ – उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में अधिकांश युवा पुरुषों के पलायन से यहाँ की सारी अर्थव्यवस्था छिन्न–भिन्न हो गई है। परिणामस्वरूप महिलाओं का कार्यभार बढ़ गया है और वह इस क्षेत्र की एक सशक्त आर्थिक धुरी बन गई हैं। कार्य की दृष्टि से पर्वतीय तथा मैदानी क्षेत्रों की महिलाओं में पर्याप्त अंतर है। मैदानी महिलाओं की अपेक्षा पर्वतीय महिलाओं पर कार्यभार अधिक है। यहाँ की अर्थव्यवस्था पूर्णरूप से कृषि और पशुपालन पर निर्भर है। अतः पुरुषों के पलायन से सम्पूर्ण कार्यभार महिलाओं पर पड़ता है। यहाँ की महिलाएँ सुबह से शाम तक खेतों में ढेले तोड़ना, गोबर डालना, फसलों की कटाई–मँड़ाई, घास, लकड़ी की व्यवस्था करना, झरने अथवा नदी से पेयजल भरकर लाना, अनाज को कूटना–पीसना, दूध दुहना, बच्चों की देखभाल करना तथा सम्पूर्ण परिवार के लिए भोजन तैयार करना आदि कार्य करती हैं। पुरुष जब खेतों में हल चलाने का कार्य करते हैं तो उनके लिए खेत में भोजन पहुँचाने का कार्य भी महिलाएँ ही करती हैं। महिलाओं के आर्थिक पक्ष में सहभागिता के निम्न कारण है–

पुरुषों के पलायन के फलस्वरूप प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्र दिन–प्रतिदिन खोखले होते जा रहे हैं। पुरुषों के पलायन से परिवार का समस्त कार्यभार महिलाओं को वहन करना पड़ता है। वन विनाश के दुष्प्रभाव स्वरूप पीने योग्य पानी को प्राप्त करने के लिए महिलाओं को प्रतिदिन काफी लंबी दूरी तय करनी पड़ती है। वन विनाश की इस प्रवृत्ति के कारण महिलाओं को ईंधन के लिए भी प्रतिदिन लगभग 10 से 15 किलोमीटर दूर जाना पड़ता है।

पारिवारिक विघटन के फलस्वरूप स्त्रियों पर कार्य का बोझ और अधिक बढ़ा है। इसके अतिरिक्त यहाँ के परिवारों में पैतृक रूप से कृषि कार्य एक निश्चित पद्धति के रूप में प्रत्येक पीढ़ी के खून में समाहित है। कतिपय क्षेत्रों में रूढ़िवादिता के कारण महिलाओं का कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों में संलग्न होना उचित नहीं माना जाता था।

शिक्षा के अभाव के कारण भी अशिक्षित युवतियाँ कृषि कार्य के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कर पाती हैं। तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा की कमी के कारण भी उन्हें पारम्परिक व्यवसाय अपनाए रहने को ही विवश होना पड़ता था।

पहाड़ों में भूमि को देवता माना जाता है, इसे पूर्वजों की धरोहर के रूप में उपयोग किया जाता है। यहाँ कृषि को लाभ की दृष्टि से नहीं बल्कि भूमि के स्वामित्व की ऊँची सामाजिक प्रतिष्ठा के रूप में प्रमुखता दी जाती है।

नेतृत्व का अभाव, बाह्य जगत से सम्बंध विच्छेद व नवीन साधनों की अनभिज्ञता ने भी महिलाओं को मात्र कृषि कार्य तक ही सीमित रखा है। किन्तु यह अधिक श्रम और कम लाभ वाली कृषि है। यहाँ की अर्थव्यवस्था धनादेशीय या मनीआर्डर अर्थव्यवस्था कही जा सकती है।

इस प्रकार पुरुषों के नौकरी या अन्य व्यवसाय हेतु मैदानी क्षेत्रों में पलायन करने से अधिकांशतः स्त्रियाँ, बूढ़े व बच्चे कृषि कार्य में संलग्न पाये जाते हैं, किन्तु स्त्रियाँ मुख्य रूप से कृषि व्यवसाय की रीढ़ बनी रहती हैं। कृषि के वैज्ञानिक प्रबंधन, लघु तथा कुटीर उद्योगों का विकास तथा स्थानीय भौतिक–भौगोलिक आधार पर स्वरोजगार नियोजन द्वारा पुरुषों का पलायन रोके जाने से महिलाओं का सामाजिक–आर्थिक स्तर स्वतः ही उन्नत हो सकता है।

संस्कृति की संरक्षिका – उत्तराखण्ड में यह एक दुर्भाग्यपूर्ण सच्चाई है कि पुरुष वर्ग पहाड़ से पलायन के साथ–साथ अपनी चिरंतन संस्कृति को खोता जा रहा है। शहरों में बस गया यह वर्ग अपने त्यौहारों, पर्वों एवं मान्यताओं को ढकोसला एवं अंधविश्वास बतलाता है। झोड़े, चाँचरी और छोलिया की अपेक्षा उसे फिल्मों के नाच अधिक अच्छे लगते हैं। यहाँ तक कि पहाड़ी कहे जाने पर उसे शर्म–सी लगती है.....। (पंत, सुरेश; 1979, पृ0– 42)

..... किन्तु हमारी सदियों पुरानी संस्कृति का जो अंग नारी वर्ग से जुड़ा है उसे अपनी तमाम समस्याओं और तकलीफों के बावजूद उसने जिन्दा रखा है। एकादशी हो या संक्राति या अन्य कोई पर्व वह कुछ समय निकाल कर घर को लीप–पोत कर उसे अपनी ही तरह की सरल एवं सुन्दर अल्पनाओं से सजा देती है। तमाम व्यस्तताओं और दिनभर की कमर तोड़ की मेहनत के बाद भी वे माघ–पूस की ठंडी रातों में कीर्तन कर नाच–गा लेती है। भादो की सप्तमी–अष्टमी को 'गंवारा' बनाकर अपनी सदियों पुरानी संस्कृति को दुहरा लेती है और शुभ 'अवसरों' पर गाये जाने वाले सदियों पुराने

गीतों को वे आज भी बड़े चाव से गाती है। .....यही तो कुछ मौके होते हैं जिनमें सम्मिलित होकर कुछ ही देर को सही, वे अपने जीवन का सारा दुःख–दर्द भूल जाती है। (पंत, सुरेश; 1979, पृ0– 43)

सामाजिक चेतना की धुरी – राज्य की मातृ शक्ति अर्थव्यवस्था की रीढ़ के साथ–साथ सामाजिक चेतना की भी धुरी है। पर्वतों की कठोरता ने उसके अंदर कर्मठता, साहस, दृढ़ता, निर्भीकता एवं कष्टसाध्य जीवन में भी अपने कर्तव्यों के प्रति सचेत रहेन की शक्ति प्रदान की है। पर्वतीय महिलाएँ राष्ट्रीय स्तर से लेकर स्थानीय, सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु सदैव संघर्षशील रही हैं। समाज में प्रचलित कुरीतियों तथा अंधविश्वासों के उन्मूलन, वन–विनाश के दुष्परिणामों के प्रति सामाजिक चेतना, शैक्षिक उन्नयन, मद्यनिषेध आदि क्षेत्रों में महिलाओं की सक्रिय भूमिका रही है।

सामाजिक चेतना जागृत करने के क्षेत्र में सुश्री मंगला देवी उपाध्याय का सक्रिय योगदान रहा। उन्होंने टिहरी रियासत के भारत गणराज्य में विलय के पश्चात उस क्षेत्र में सर्वतोमुखी प्रगति हेतु महिला मंडल दलों की स्थापना की। इसी क्रम में श्रीमती शकुन्तला देवी और श्रीमती चंद्रा पंवार के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। महात्मा गांधी की विदेशी शिष्या सरला बेन ने पर्वतीय महिलाओं के कल्याण हेतु 'लक्ष्मी आश्रम' नामक संस्था की स्थापना की। इस आश्रम में बागेश्वर जनपद की कौसानी शाखा द्वारा कुमारी कमला और श्रीमती बसंती देवी के नेतृत्व में सर्वोदय की विचारधारा के अन्तर्गत बालवाड़ी केन्द्र, कताई–बुनाई प्रशिक्षण तथा स्वावलंबन के कई कार्यक्रम प्रारम्भ किए गए। (बलोदी, राजेन्द्र प्रसाद; 2008, पृ0– 211)

टिहरी गढ़वाल में राजमाता कमलेंदुमती शाह के प्रयासों से 1962 में नरेन्द्र महाविद्यालय की स्थापना की गई। नशाबंदी आन्दोलन के दौर में कुंतीदेवी वर्मा, तुलसी रावत, दुर्गावती पन्त, भागीरथी वर्मा, भक्तिदेवी, भागुलीदेवी, जीवंती ठकुरानी आदि महिलाएं सक्रिय रूप से आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान करती रहीं। 1930–32 के मध्य अनेक महिलाओं ने शराबबंदी आन्दोलन में बढ़–चढ़कर भाग लिया जिनमें जानकी देवी, सरस्वती देवी, पद्मावती आदि महिलायें प्रमुख थी।

राष्ट्रीय आन्दोलन में भी महिलाओं ने अभूतपूर्व साहस का परिचय दिया। बागेश्वर में जन्मी बिश्नीदेवी बाल–विधवा तथा अल्पशिक्षा प्राप्त होते हुए भी 19–20 वर्ष की उम्र में मंचों से ओजस्वी स्वर में राष्ट्र प्रेम के गीत गाया करती थी। 1930 में बिश्नीदेवी को गिरफ्तार कर अल्मोड़ा जेल में रखा गया। जेल के कष्टमय जीवन में भी वह इन पंक्तियों को प्रायः सुनाया करती थीं –

जेल न समझो बिरादर, जेल जाने के लिए।

यह कृष्ण मंदिर है, प्रसाद पाने के लिए।

(बलोदी, राजेन्द्र प्रसाद; 2008, पृ0– 212)

स्थानीय सामाजिक गतिविधियों, नारी उत्पीड़न, कुरीतियों, मद्यनिषेध, शिक्षा आदि क्षेत्रों में उल्लेखनीय कार्य करने वाली टिंचरी माई (दीपा देवी) थीं। 1955–56 में पौड़ी में अधिकारियों के समक्ष ही टिंचरी की दुकान में आग लगाकर उन्होंने पहाड़ों को नशा मुक्त करने का व्रत लिया। वे जीवन के अंतिम समय तक नशाबंदी, शिक्षा और अन्य सामाजिक क्षेत्रों में निरन्तर कार्य करती रही। पिथौरागढ़ जनपद की भोटिया जनजाति की तुलसीदेवी ने युवावस्था में विधवा हो जाने पर सरला बहन की प्रेरणा पाकर 'कताई–बुनाई केन्द्र' एवं 'ऊन–गृह उद्योग समिति' के माध्यम से निराश्रित असहाय महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने का कार्य किया। (बलोदी, राजेन्द्र प्रसाद; 2008, पृ0– 213)

टिहरी रियासत में 84 दिन की यातनायुक्त भूख हड़ताल में अपने प्राणों का बलिदान देने वाले अमर शहीद श्रीदेव सुमन की पत्नी श्रीमती विजय लक्ष्मी सुमन ने अपने पति के स्वप्नों को पूरा कर टिहरी राजशाही के अत्याचारों से प्रजा को मुक्ति दिलाने, पहाड़ों में पेयजल समस्या को हल करने तथा महिलाओं को सैन्य प्रशिक्षण दिलाने आदि क्षेत्रों में सक्रिय रूप से कार्य किया। राज्य के पर्वतीय क्षेत्रों में 1972–73 के दशक में वन–सम्पदा को विनाश से बचाकर पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में 'चिपको आन्दोलन' की नायिका बनकर गौरादेवी ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर 'चिपको वूमन' के नाम से प्रसिद्धि पायी।

इसी क्रम में वाणी देवी तथा प्रेमा देवी का योगदान भी उल्लेखनीय है। मालती देवी के नेतृत्व मे अवैध खनन द्वारा जल, जमीन, जंगलों को बचाने हेतु चला खीराकोट आन्दोलन पर्यावरण रक्षा में मील का पत्थर सिद्ध हुआ है। (बलोदी, राजेन्द्र प्रसाद; 2008, पृ0– 213)

उत्तराखण्ड आन्दोलन में राज्य प्राप्ति हेतु महिलाओं का संघर्ष और बलिदान सदैव अमर रहेगा। सन् 1994 तथा उसके पश्चात आन्दोलन की बागडोर मुख्य रूप से महिलाओं ने संभाली। अनेक बार पुलिस की लाठियाँ खाकर उन्होंने जुझारूपन का परिचय दिया। इसके अतिरिक्त सामाजिक चेतना जागृत करने में गंगोत्री....., राधा भट्ट, तारा मिश्रा, डॉ वंदना शिवा, श्रीमती कौशल्या डबराल एवं श्रीमती सुशीला बलूनी का योगदान अविस्मरणीय है। (बलोदी, राजेन्द्र प्रसाद; 2008, पृ0– 213)। इस प्रकार उत्तराखण्ड की मातृशक्ति वास्तव में शक्ति स्वरूपा है। सामाजिक चेतना के साथ–साथ राज्य के समग्र विकास में आज भी वह सशक्त भूमिका निभा रही है।

निष्कर्ष –

इस प्रकार उत्तराखण्ड में स्त्री जीवन का वास्तविक स्वरूप कई रूपों में प्रतिबिम्बित होता है। उत्तराखण्ड की स्त्री एक ओर जहाँ परिवार के केन्द्र बिन्दु के रूप में बचपन से ही माँ की बहुआयामी भूमिका निभाती है तो वहीं दूसरी ओर कड़ा श्रम करते हुए अपने जीवन को लोहे के समान पिघलाती है। अपने जीवन की विडम्बनाओं ने जहाँ उसको वेदना की प्रतिमूर्ति बनाया तो हृदय की सबलता ने उसे शक्ति स्वरूपा भी बनाया है। उत्तराखण्ड की स्त्री न केवल ग्रामीण जीवन में अर्थव्यवस्था की रीढ़ है अपितु सदियों की अपनी अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर को भी उसी ने संरक्षित किया है। राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में उत्तराखण्ड की महिलाओं द्वारा किये गए कार्यों को भले ही महत्व न मिला हो, किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि स्वाधीनता के पूर्व और पश्चात भी उत्तराखण्डी महिला ने अपने सीमित दायरे और सामाजिक रूढ़िवादिता के बावजूद अपने समय की चुनौतियों का सफलता से मुकाबला किया तथा हर समस्या के समाधान के लिए अपनी लड़ाई स्वयं लड़कर विजय प्राप्त की। उत्तराखण्ड में शिक्षा के क्षेत्र में प्रथम प्रवर्तकों में महिलाएँ रही हैं। शिक्षा और समाज सेवा के कार्यों में उत्तराखण्ड की नारी का विशेष योगदान रहा है। इस प्रकार उत्तराखण्ड की ग्राम्या जीवन के विविध क्षेत्रों में अपने किरदारों को निभाते हुए निरन्तर गतिशीलता का परिचय देती है।

सन्दर्भ–

बलोदी, राजेन्द्र प्रसाद; 2008, पृ0– 211)

भट्ट, कृष्णा, ''मध्य हिमालय की महिलाओं का सामाजिक व आर्थिक जीवन'', इस्टर्न बुक लिंकर्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1988

चन्दोला, सरला, ''उत्तराखण्ड का लोक साहित्य और जनजीवन'', तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1999

पंत, सुरेश, ''उत्तरीय'', 1979